बिखरे सूत्रों को जोड़ने की कला–स्वाध्याय

☐ प्रो० उदय जैन

मानवीय सभ्यता के इतिहास में भारत अपनी दो देन के लिए प्रसिद्ध है—एटम और अहिंसा। इसलिये यह कहना सही नहीं है कि आधुनिक विज्ञान की, प्रयोगात्मक विज्ञान की परम्परा का प्रचलन पश्चिम से प्रारम्भ हुआ। पश्चिम में विज्ञान की परम्परा कोई ४०० वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है जबकि भारत में वैज्ञानिक और आध्यात्मिक चिन्तन की परम्परा हजारों साल पुरानी है। जैन दर्शन में अणु-परमाणु और पुद्गल का जितनी सूक्ष्मता से विश्लेषण हुआ है, उतनी सूक्ष्मता से अध्ययन और कहीं नहीं हुआ है। वस्तुतः एटम और अहिंसा भारत और हिन्दू-जैन जीवन दर्शन की देन है—जिसके सूत्र इतिहास में बिखरे पड़े हैं और इतिहास के बिखरे सूत्र समेटने का भगीरथ कार्य 'स्वाध्याय' के बिना संभव नहीं है। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का पूरा जोर 'स्वाध्याय' पर था, वह सम्भवतः इसलिए कि 'स्व' का अध्ययन, 'स्वयं' का अध्ययन, 'स्वयं' की 'पहिचान' आदि स्थापित करना हो–तो उसके लिए स्वाध्याय ही एक मात्र साधन है, जिसके सहारे न केवल हम इतिहास के बिखरे सूत्रों को ही समेट सकते हैं, वरन् हिन्दू और जैन धर्म की विश्व को जो देन रही है—मानवीय सभ्यता को जो देन रही है, उसका मूल्यांकन कर सकते हैं।

उपनिषद् के ऋषियों ने गाया है—

"असतो मा सद् गमयः,
तमसो मा ज्योतिर्गमयः,
मृत्योर्मा अमृतम्: गमयः।"

इससे अधिक मनुष्य की सभ्यता का इतिहास और क्या हो सकता है? मानवीय संवेदना और चेतना का बड़ा ऊँचा भविष्य क्या हो सकता है? जिसमें कहा गया है कि हम असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर बढ़ें।

और यही मृत्यु से अमरता का पाठ जैन दर्शन हमें सिखाता है। जीवन की अनन्त यात्रा के क्रम में यह मनुष्य जीवन बड़ा बहुमूल्य और गुणवान है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने जीवन की इसी गुणवत्ता को जन-जन तक पहुँचाया है कि हम केवल बहिर्मुखी न रहें वरन् अपने अन्तर में झांक कर देखें तो एक नया सौन्दर्य, नया रूप और नया जीवन हमें दिखाई देगा—जो मोह, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, मैथुन और परिग्रह से परे जीवन के प्रति हमें एक नई दृष्टि देगा। अपने प्रवचनों को आचार्य श्री ने सुबोध और सरल बनाने के लिए 'आज के परिदृश्य' को आधार बनाया।

आपने यदि उनके 'प्रार्थना-प्रवचन' पढ़े हों तो आपको लगेगा कि उनमें हमें आत्म-बोध मिलता है और जीवन को समझने की एक नयी दृष्टि.....।

आचार्य श्री फरमाते हैं—"आत्मोपलब्धि की तीव्र अभिलाषा आत्म-शोधन के लिए प्रेरणा जाग्रत करती है।" किसी ने ज्ञान के द्वारा आत्मशोधन की आवश्यकता प्रतिपादित की, किसी ने कर्मयोग की अनिवार्यता बतलाई, तो किसी ने भक्ति के सरल मार्ग के अवलम्बन की वकालात की। मगर जैन धर्म किसी भी क्षेत्र में एकान्तवाद को प्रश्रय नहीं देता.....जैन धर्म के अनुसार मार्ग एक ही है, पर उसके अनेक अंग हैं—अतः उसमें संकीर्णता नहीं विशालता है और प्रत्येक साधक अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार उस पर चल सकता है.....। प्रभु की प्रार्थना भी आत्म-शुद्धि की पद्धति का अंग है.....और प्रार्थना का प्राण भक्ति है। जब साधक के अन्तःकरण में भक्ति का तीव्र उद्रेक होता है, तब अनायास ही जिह्वा प्रार्थना की भाषा का उच्चारण करने लगती है, इस प्रकार अन्तःकरण से उद्भूत प्रार्थना ही सच्ची प्रार्थना है।

किन्तु हमें किसकी प्रार्थना करना चाहिये—इसका उत्तर देते हुए आचार्य श्री ने कहा है कि निश्चय ही हमें कृतकृत्य और वीतराग देव की और उनके चरण-चिह्नों पर चलने वाले एवं उस पथ के कितने ही पड़ाव पार कर चुकने वाले साधकों, गुरुओं की ही प्रार्थना करना चाहिए। देव का पहला लक्षण वीतरागता बताया गया है—"अरिहन्तो मह देवो। दसट्ठ दोसा न जस्स सो देवो.....।"

किन्तु हम उन पत्थरों की पूजा करते हैं—इस आशा में कि हमें कुछ प्राप्त हो जाय। कुछ भौतिक उपलब्धियाँ मिल जाय। किन्तु इससे हमें आत्म-शान्ति प्राप्त नहीं होगी।

तीर्थंकर 'नमो सिद्धाणं' कह कर दीक्षा अंगीकार करते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—"वीतराग स्मरन् योगी, वीतरागत्व मापनुयात्" अर्थात् जो योगी ध्यानी वीतराग का स्मरण करता है, चिन्तन करता है वह स्वयं वीतराग बन जाता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

यह जैन दर्शन की ही महिमा है कि उसने मनुष्य को इतनी महत्ता, इतना गौरव, इतनी गरिमा और ऊँचाई दी कि वह स्वयं ईश्वर बन सकता है, वीतरागी बन सकता है—बिना इस बात का ध्यान किये कि उसका रंग क्या है? रूप क्या है? जाति क्या है? वह गरीब है या अमीर और उसकी हैसियत क्या है? हम सोचते हैं दुनिया के इतिहास में यह अनुपम बात है कि मनुष्य को रंग, रूप और जाति से परे हटकर इतनी ऊँचाई प्रदान की जाए। और यहीं जैनत्व विश्वव्यापी स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

भारत ने यह जाना है, सोचा है और समझा है कि इस ब्रह्माण्ड की समग्र चेतना एक ही है—इसलिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात हमने कही। इसलिये दुनिया के किसी कोने में यदि रंग-भेद पर अत्याचार होता है, तो हमारी आत्मा पर जैसे चोट होती है, यदि कहीं खाड़ी युद्ध में विध्वंस होता है, तो हमें लगता है कि हमारा ही अपना कहीं नष्ट हो रहा है। यह जो समग्र चिन्तन इस धरा पर विकसित हुआ है—उसको परिपक्वता देने में जैन दर्शन का बड़ा महत् योगदान है और हिंसा के इस माहौल में यदि अहिंसा एक सशक्त धारा के रूप में, जीवन दर्शन और प्रणाली के रूप में विद्यमान है—तो उसका श्रेय बहुत कुछ जैन साधु-सन्तों और परम प्रकाशमान आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. जैसे महापुरुषों को जाता है—जिन्होंने स्वाध्याय को जीवन और साधना के एक हिस्से के रूप में न केवल अपने चरित्र और आचार का हिस्सा बनाया, वरन् उसे लाख-लाख लोगों के जीवन में उतारा भी।

इस पुनीत प्रसंग पर यदि हम 'स्वाध्याय' को अपने जीवन में उतार सकें—तो न केवल एक अहिंसक धारा का, प्रवाह अपने जीवन में कर पाएँगे वरन् एक नये मनुष्य का, अहिंसक मनुष्य का अहिंसक समाज का निर्माण हम कर सकेंगे—जो हिंसा से भरे इस विश्व को एक नया संदेश दे सकेगा कि पूरा ब्रह्माण्ड एक है—एक ही चेतना विद्यमान है। क्योंकि यह भारत ही है—जिसने दुनिया को एटम और अहिंसा—ये दोनों अपार शक्तिवान अस्त्र दिये। एटम यदि भौतिक ऊर्जा का प्रतीक है, तो अहिंसा आध्यात्मिक ऊर्जा का सर्वोच्च अस्त्र.....। आइये, उसे और गतिमान बनाएँ।

—ब-८, विश्वविद्यालय प्राध्यापक आवास,
ए. बी. रोड, इन्दौर–४५२ ००१

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org